जनतन्त्र के पक्ष में 4

जाति की राजनीति

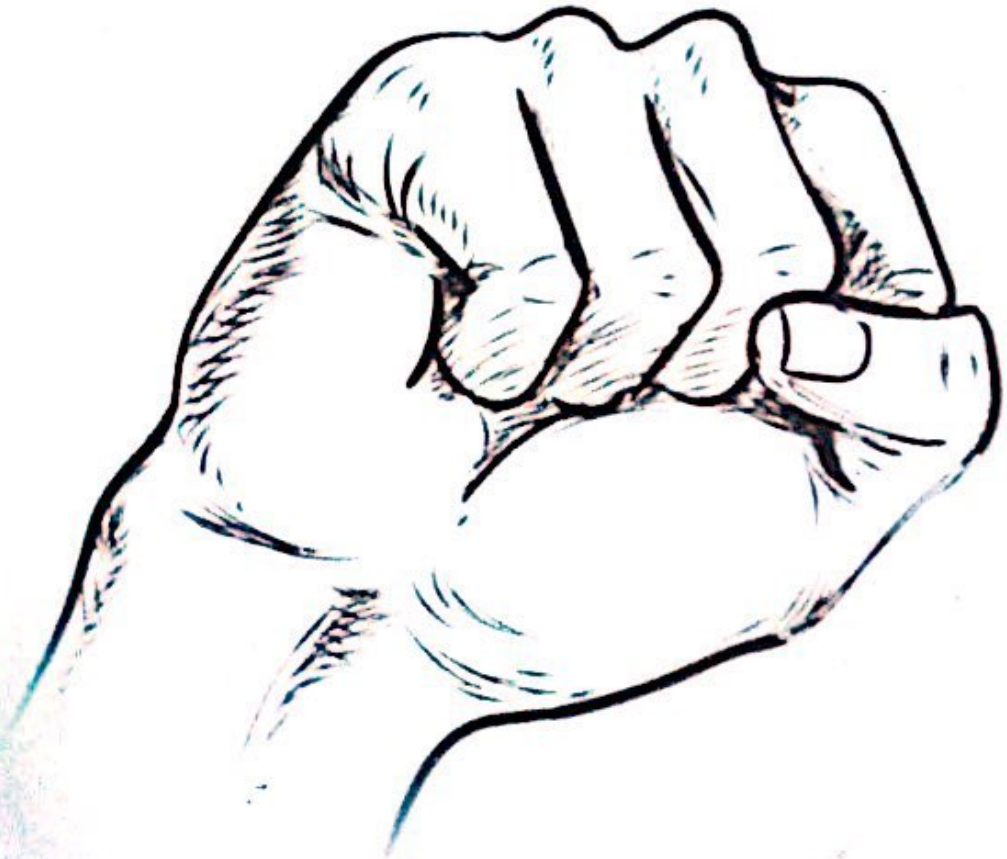

प्रधान संपादक
सर्वेश कुमार मौर्य

संपादक
अमिष वर्मा

Scanned with CamScanner

प्रधान कार्यालय

स्वराज प्रकाशन

4648/1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

दूरभाष : 011-23289915

E-mail : swaraj_prakashan@yahoo.co.in

शाखा

288, ई.डब्लू.एस., शास्त्रीपुरम

आगरा-282007 (उ.प्र.)

© सर्वेश कुमार मौर्या / अमिष वर्मा

मूल्य : ₹ 100

प्रथम संस्करण : 2019

ISBN : 978-81-937568-7-4

अजय मिश्रा द्वारा **स्वराज प्रकाशन,** 4648/1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 से प्रकाशित तथा ओम आफसेट, जगतपुरी शाहदरा, दिल्ली-110093 में मुद्रित

Scanned with CamScanner

5

दलित-स्त्रीवाद : उम्मीदें और आशंकाएँ

❐ कवितेंद्र इंदु

इस लेख में मैं दलित-स्त्रीवाद की कुछ आंतरिक समस्याओं की चर्चा करना चाहूँगा। आरम्भ में ही स्पष्ट कर दूँ कि यह कोई औपचारिक लेख नहीं है, इसे आत्मीय संवाद के रूप में लिया जाना चाहिए। हिंदी में दलित-स्त्रीवाद की चर्चा अभी शुरू ही हुई है, अभी इसके साथ कद्दावर लेखकों के नाम नहीं जुड़े हैं; तमाम मुद्दे अभी अनछुए हैं और कुल मिलाकर स्थिति यह है कि दलित स्त्री के प्रति सहानुभूति का भाव रखने वाले कुछ लोग भी यह कहकर दलित-स्त्रीवाद की अवधारणा को नकार देते हैं कि 'इसकी कोई विचारधारा नहीं है'। सवाल बिल्कुल उठ सकता है कि ऐसे में जबकि एक संभावनाशील विमर्श अभी ठीक से खड़ा भी नहीं हुआ है, तो उसका स्वागत करने और कुछ रियायतें देते हुए उसे प्रोत्साहित करने की बजाय उसकी चुनौतियों के बारे में बात करने का क्या औचित्य है!

यह सही है कि विचारधाराओं और विमर्शों के उद्भव और अवसान की अपनी भौतिक परिस्थितियाँ होती हैं, लेकिन विचारधाराएँ/विमर्श भी कोई निष्क्रिय चीज नहीं होते। अपने स्वरूप के अनुसार वे भी परिवेश के साथ अंतर्क्रिया करते हैं, उसे बदलते हैं और इस प्रक्रिया में खुद को भी बदलते हैं : इसी प्रक्रिया में वे सरवाइव करते हैं, विकसित होते हैं अथवा विघटित या विनष्ट हो जाते हैं। यानी विमर्शों की नियति में उनकी अपनी बनावट का योगदान स्वयं उस भौतिक परिवेश से कम नहीं होता, जिसमें वे रूपाकार ग्रहण करते हैं। आमतौर पर स्थापित होने की प्रक्रिया में संबद्ध लेखकों द्वारा विमर्शों की अंदरूनी समस्याओं की अनदेखी की जाती है या उन पर पर्दा डालने की कोशिश की जाती है। यह प्रवृत्ति स्वयं उस विमर्श के लिए कितनी घातक हो सकती है, इसका अंदाजा खुद हिंदी में दलित-विमर्श के हश्र को देखकर लगाया जा सकता है। दलित-स्त्रीवाद की चुनौतियों पर चर्चा करने की वजह यही है।

दलित-स्त्रीवाद की चुनौतियों की चर्चा करने का आशय यह बिल्कुल नहीं है कि उसमें दिख रही समस्याएँ बड़ी भयावह हैं या मुझे उसके फासिस्ट हो जाने का

खतरा नजर आ रहा हो। असल में मुझ जैसे कुछ लोग दलित-स्त्रीवाद को मौजूदा दौर में हिंदी के सबसे संभावनाशील, सकारात्मक और प्रगतिशील विमर्श के रूप में देखते हैं, जिसमें मार्क्सवाद, स्त्रीवाद और दलित-विमर्श तीनों के सरोकारों (ध्यान दें, केवल सरोकारया पद्धति, उपलब्धियाँ या मान्यताएँ नहीं) का संश्लेष दिखाई देता है। अर्थात् जो लोग जाति-वर्ग-जेंडर के सवालों को एक-दूसरे से पृथक मानने की बजाय उन्हें एक ही उत्पीड़नकारी व्यवस्था की अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं या जो लोग उत्पीड़न के किसी भी रूप के विरोधी हैं उनके लिए दलित-स्त्रीवाद एक आश्वस्तिकर आवाज है।

सबसे पहले दलित-स्त्रीवाद के लेखकीय आधार की बनावट पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यह कोई स्थिर-परिभाषित समूह नहीं है। नेतृत्व शब्द का प्रयोग तो इस संदर्भ में ठीक नहीं होगा, लेकिन मुद्दों को उठाने और उसके आस-पास लेखकों को संगठित, प्रोत्साहित करने की पहल प्रायः वे कर रहे हैं जो किसी न किसी रूप में सोशल ऐक्टिविज्म से जुड़े रहे हैं और इसी क्रम में उन्होंने दलित स्त्रियों की दारुण जीवन-स्थितियों और बहुआयामी शोषण की गंभीरता को समझा है। दूसरी श्रेणी में ऐसे कुछ गंभीर लेखक-विचारक भी इसका समर्थन कर रहे हैं, जिनकी निष्ठा मूलतः किसी अन्य विमर्श (मार्क्सवाद, दलित-विमर्श या स्त्रीवाद) से जुड़ी है, लेकिन जिन्हें लगता है कि दलित-स्त्रीवाद कुछ जरूरी सवाल उठा रहा है, जो उक्त विमर्शों में छूट गए थे और उन पर ध्यान दिया जाना जरूरी है। यानी जिन विमर्शों से वे अपना जुड़ाव महसूस करते हैं उनकी अपर्याप्तता उन्हें दलित-स्त्रीवाद की ओर आकर्षित करती है।

दलित-स्त्रीवाद का तीसरा सबसे बड़ा घटक युवा पीढ़ी के संवेदनशील नवोदित लेखक-लेखिकाओं से बना है। उत्पीड़न के विशिष्ट रूपों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के बावजूद इनमें ऐसी वैचारिक कट्टरता नहीं आई है कि वे अन्य रूपों को गौण या उपेक्षणीय मानें। दलित-स्त्रीवाद का भविष्य इन्हीं लेखकों के हाथ में है। दलित-स्त्रीवाद से संबंधित रचनाओं और संकलनों को देखें तो स्पष्ट होता है कि इनमें अधिकांशतः दलित समुदाय से आए स्त्री-पुरुष हैं; लेकिन उनके अलावा गैर-दलित यहाँ तक कि आदिवासी और मुस्लिम समुदाय से आए लेखक भी इनमें शामिल हैं। एक तथ्य और गौरतलब है कि इन लेखकों की सर्जनात्मक क्षमता के प्रमाण तो सामने आ चुके हैं, लेकिन दलित-स्त्रीवाद की वैचारिकी निर्मित करने का काम अभी एकदम आरंभिक अवस्था में है। शायद इसी अभाव की पूर्ति के लिए 'स्त्रीकाल' पत्रिका के 'दलित-स्त्रीवाद' विशेषांक में विभिन्न विचार सरणियों से जुड़े लेखकों के दलित स्त्री संबंधी लेखों और साक्षात्कारों को जगह दी गई है। ऐसे लेखकों में उमा चक्रवर्ती, सौरभ दुबे, निवेदिता मेनन और मैनेजर पांडेय का नाम लिया जा सकता है। तुलसीराम और कांचा इलैया जैसे लेखकों को भी इसी श्रेणी में शामिल माना जाना चाहिए, जिनका प्राथमिक सरोकार जाति-विषयक मुद्दे हैं।

स्पष्ट है कि फिलहाल दलित-स्त्रीवाद कोई अस्मितावादी विमर्श नहीं है। इसमें जाति या जेंडर के आधार पर कोई स्थायी सदस्यता प्राप्त नहीं होती, न ही किसी

Scanned with CamScanner